जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ
प्रकाशन सूची

क्र.	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	मूल्य
01.	Anekant: Reflection & Clarification	Acharya Mahaprajna	30
02.	Anekant: Views & Issues	Acharya Mahaprajna	30
03.	Shraman Bhagwan Mahavir Life & Doctrine	Shri S.C. Rampuria	300
04.	Anekanta- The Third Eye	Acharya Mahaprajna	195
05.	Science in Jainism	Prof. M.R. Gelra	200
06.	The Quest for Truth	Acharya Mahaprajna	195
07.	Sound of Silence	Acharya Mahaprajna	140
08.	Journey into Jainism	Sadhvi Vishrut Vibha	39
09.	Jain Studies & Science	Prof. (Dr.) M.R. Gelra	400
10.	Non-violence Relative Economics and A New Social Order	Prof. B.R. Dugar/Dr. Satya Prajna/ Dr. Samani Ritu Prajna	500
11.	Jain Biology	Late Shri Jetha Lal S. Zaveri/ Prof. Muni Mahendra Kumar	200
12.	Samayasara	Late Shri Jetha Lal S. Zaveri/ Prof. Muni Mahendra Kumar	450
13.	Jain Paribhasika Sabdakosa	Mukhya Niyojika Sadhavi Vishrutavibha	1125
14.	Bhagavai-2	Acharya Mahaprajna Eng. Trans. by Prof. Muni Mahendra Kumar & Late Dr. N. Tatia	1695
15.	JVB & JVBU Research Work	Samani Agam Prajna/Dr. Vandana Mehta	100
16.	Bibliography of Jain Text in Tamil	Shri K.P. Aravaanan	50
17.	The Enigma of the Universe	Prof. Muni Mahendra Kumar	500
18.	Preksha Meditation and Human Health	Prof. J.P.N. Mishra and Dr. P.S. Shekhawat	500
19.	आचार्य महाप्रज्ञ का संस्कृत साहित्य	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	550
20.	युग को आचार्य महाप्रज्ञ का योगदान	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय/डॉ. जे.पी.एन. मिश्रा	100
21.	अंगुत्तर निकाय भाग-1	श्री श्रीचंद रामपुरिया	50
22.	अंगुत्तर निकाय भाग-2	श्री श्रीचंद रामपुरिया	60
23.	महाभारत परिक्रमा	श्री श्रीचंद रामपुरिया	60
24.	श्रमण सूक्त	श्री श्रीचंद रामपुरिया	150
25.	तीर्थंकर वर्द्धमान जीवन प्रसंग	श्री श्रीचंद रामपुरिया	80
26.	आवश्यक निर्युक्ति खण्ड-1	डॉ. समणी कुसुम प्रज्ञा	400
27.	आचारांग और महावीर	साध्वी शुभप्रज्ञा	150
28.	सम्बोधि का समीक्षात्मक अनुशीलन	समणी स्थित प्रज्ञा	100
29.	रत्नपालचरित्र	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	100
30.	दूरस्थ शिक्षा की उपयोगिता	डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	100
31.	नई सुबह	डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	100
32.	जैन संस्कृति और जीवन मूल्य भाग-1,2,3	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा	75
33.	भिक्षु न्यायकर्णिका	पं. विश्वनाथ मिश्र	120
34.	जीवन विज्ञान और स्वास्थ्य	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा/समणी श्रेयस प्रज्ञा	120
35.	योग वैशिष्ट्य	डॉ. जे.पी.एन. मिश्रा	400
36.	अर्द्धमागधी साहित्य में गणित	डॉ. अनुपम जैन	200
37.	जैन पारिभाषिक शब्दकोश	मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा	995
38.	जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा	110
39.	शिक्षा दर्शन एवं मूल्य विकास	डॉ. समणी मल्लि प्रज्ञा/डॉ. हेमलता जोशी	160
40.	प्रेक्षाध्यान और योग	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा	150

प्रकाशक - सम्पादक - प्रो. अनिल धर द्वारा जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं के लिए प्रकाशित एवं गिरधर ऑफसेट प्रिन्टर्स, लाडनूं द्वारा मुद्रित

TULSĪ PRAJÑĀ

Vol. 169-170

ISSN 0974-8857

तुलसी प्रज्ञा
TULSĪ PRAJÑĀ

वर्ष 43 • अंक 169-170 • जनवरी-जून, 2016

A Peer Reviewed Research Quarterly

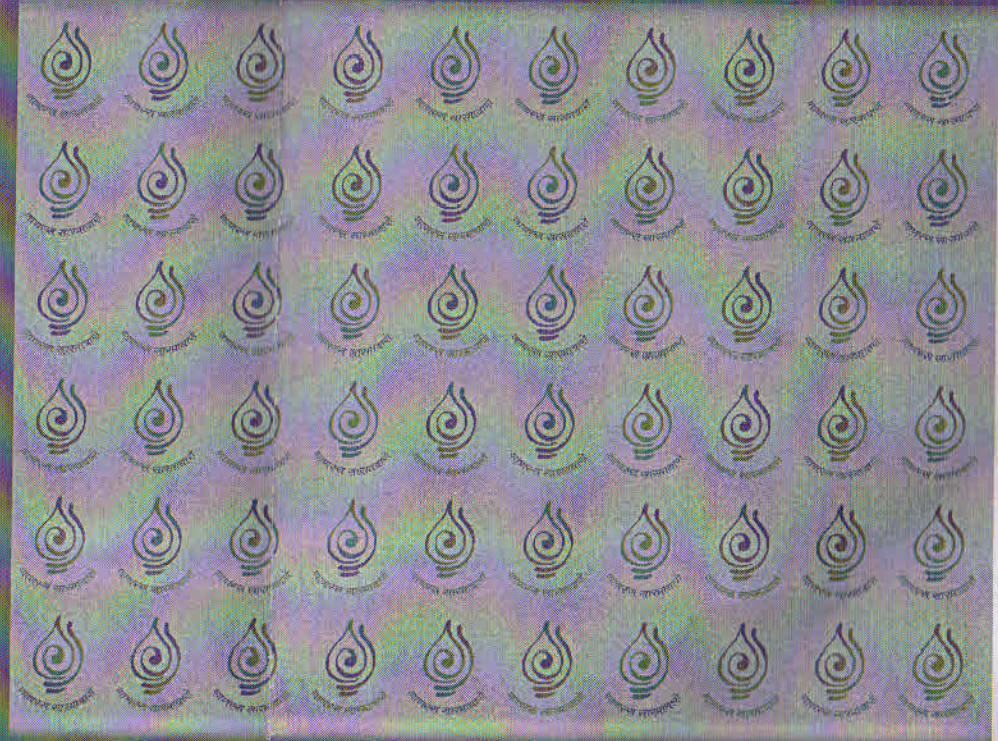

जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान) भारत
JAIN VISHVA BHARATI INSTITUTE
Ladnun - 341 306, Rajasthan, India

तुलसी प्रज्ञा ISSN 0974-8857

TULSĪ PRAJÑĀ

A Peer Reviewed Research Quarterly of Jain Vishva Bharati Institute

YEAR-43 VOL.-169-170 JANUARY-JUNE, 2016

अनुक्रमणिका / CONTENTS

ENGLISH SECTION

Subject	Author	Page No.
Ācārāṅga-Bhāṣyam	Ācārya Mahāprajña	7-12
Mathematical Ideas in *Bhagawatī Sūtra*	Samani Vinay Pragya	13-30
Peace Journalism: The Need of the Hour	Dr Archna Katoch	31-44
Managing Academic Stress of Adolescents through Preksha Meditation : A Controlled Study	Vinod Kaswa, Vivek Maheshwari	45-55
Adoption And Usage of Sanskrit Language in Inclusive Education	Dr. Dhananjaya Bhanja	56-61
Jain Inscriptions of the Western Ganga Dynasty	Pinal Jain	62-70

हिन्दी खण्ड

विषय	लेखक	पृ. संख्या
जैन ज्ञान मीमांसा	डॉ. प्रद्युम्नशाह सिंह	71-77
जैन दर्शन में सृष्टि-तत्त्व विमर्श : एक अवलोकन तथा मूल्यांकन	डॉ. सुरेश्वर मेहेर	78-85

Subject	Author	Page No.
गीता का ज्ञानयोग	प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'	86-93
सूत्र स्वाध्याय का अधिकारी कौन?	मुनि मदन कुमार	94-99
गाँधी दर्शन में अहिंसा एवं शिक्षा के आयाम	डॉ. जुगल किशोर दाधीच	100-105
शांति स्थापना में वर्तमान शांति शिक्षा का योगदान	डॉ. रवीन्द्र सिंह राठौड़	106-110
उत्तराध्ययन सूत्र की कथाओं में निहित मानवीय संवेदना का प्रतिपादन	डॉ. वंदना मेहता	111-119
वनस्पतिकाय का शारीरिक उपकार	समणी ज्योतिप्रज्ञा	120-126
गाँधीवादी चिन्तन में नारी विकास	भारती कंवर	127-136

गीता का ज्ञानयोग

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'

गीता एक ऐसा आध्यात्मिक ग्रन्थ है, जिसमें संसार सागर से पार होने के लिए तीन मार्ग बतलाये गये हैं- कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग एवं ज्ञान मार्ग। आचार्य शंकर तो गीता को ज्ञान मार्ग प्रधान ग्रन्थ बताते हैं। उनके अनुसार मोह रूपी अज्ञानता के पाश में जकड़े हुए अर्जुन को भगवान कृष्ण ने ज्ञानरूपी प्रकाश से अवगति प्रदान की। अर्जुन जब कुरुक्षेत्र के मैदान में शत्रु सेना में पितामह, गुरुप्रवर, मामा, ताऊ, बन्धु-बन्धवों को देखता है तो अपना गाण्डीव धनुष रख देता है तथा कर्त्तव्यविमुख हो जाता है। युद्ध भूमि में युद्ध का नायक यदि स्वेच्छा से शस्त्रविहीन हो जाये तो जो विषमस्थिति उत्पन्न हो जाती है, उसी स्थिति से पाण्डवों की सेना को सरोकार होना पड़ा। यह तो अच्छी बात थी कि सारथी के रूप में उनके साथ साक्षात् भगवान कृष्ण थे जिन्होंने तरह-तरह के ज्ञान से न केवल उनकी अज्ञानता को दूर किया अपितु एक क्षत्रीय को युद्ध रूपी कर्म करने के लिए प्रेरित किया। आचार्य शंकर के अनुसार यदि अर्जुन की अज्ञानता की निवृत्ति न होती तो वह कर्त्तव्य पथ पर कभी अग्रसर नहीं हो सकता था। कृष्ण के ज्ञान रूपी उपदेश ही अर्जुन की अज्ञानता को दूर कर सके थे, अतः गीता में ज्ञान मार्ग श्रेष्ठ है। अतः गीता में ज्ञान मार्ग के वैशिष्ट्य को उकेरा गया है ताकि अज्ञानरूपी अन्धकार से जनमानस को निवृत्ति मिले और ज्ञान मार्ग से वह शाश्वत लक्ष्य को पार कर सके।

ज्ञानमार्ग की प्राचीनता

प्रश्न यह उठता है कि गीता में जिस ज्ञान मार्ग की महिमा को उकेरा गया है, वह शाश्वत है या अशाश्वत? क्या अर्जुन को दिये गये कृष्ण के उपदेश सनातन हैं? भगवान कृष्ण के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में ही इस ज्ञान के उपदेश को मैंने सर्वप्रथम सूर्य को दिया था। सूर्य के बिना हम अपनी सृष्टि की कल्पना नहीं

कर सकते। सूर्य ने वही उपदेश मनु को दिया और मनु ने राजा इक्ष्वाकु को दिया। कहा भी गया है-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत।।[1]

शास्त्रों में सूर्य को बुद्धि का अधिष्ठाता माना गया है। इस कारण से वह ज्ञान का स्रोत है। इसलिए श्रीकृष्ण सूर्य को ही ज्ञान ग्रहण करने वाला प्रथम तत्त्व बताते हैं। श्रुति का प्रतीक सूर्य है, जो निरासक्त होकर लोक कल्याण के लिए कार्य करता है। मनु ने भी अपनी मनुस्मृति में वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप कर्त्तव्य पालन की शिक्षा दी तथा इक्ष्वाकुवंशीय राजा राम भी धरा पर गीता के ज्ञान के उपदेश को सार्थक किया। अतः गीता का ज्ञान कोई नयी घटना नहीं है। भारतीय परम्परा किसी भी ज्ञान का कोई आदि नहीं मानती, वेद भी अनादि है। गीता का ज्ञान भी अनादि है। यह प्राचीन ज्ञान काल क्रम से मन्द होता गया। महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने एक ऐसा अवसर उपस्थित कर दिया कि श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से पुनः वह ज्ञान प्रस्फुटित हुआ।

योग्य शिष्य को ज्ञान

गीता का ज्ञान किसी कुपात्र के लिए नहीं है। अर्जुन जैसे सुपात्र के लिए है। वही कृष्ण युद्ध रोकने के लिए कौरव नरेश धृतराष्ट्र और युवराज दुर्योधन के पास जाते हैं। उन्हें भी सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रेरित करते हैं किन्तु अहंकार के दावानल में जल रहे दुर्योधन पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। अहंकारजनित अज्ञानता के वशीभूत होकर वह यहाँ तक कहता है कि - 'सूच्याग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशवः, अर्थात् हे केशव! आप पांच गांव की बात कर रहे हैं, मैं तो पाण्डवों को सूई की नोक के बराबर जमीन नहीं दूंगा। यहीं नहीं उसने ज्ञान के प्रतीक श्रीकृष्ण को बांधने का दुस्साहस भी किया। जहाँ भक्ति भाव नहीं, जहाँ जिज्ञासु भाव नहीं, जहां शिष्यत्व भाव नहीं वहां ज्ञान अवतरित कैसे हो सकता है? अर्जुन मोहासक्त हुआ, अज्ञान के पाश में जकड़ गया किन्तु अपने भक्तिभाव, जिज्ञासुभाव और शिष्यत्व भाव के कारण वह ज्ञान को तब तक ग्रहण करता गया जब तक उसका मोह दूर नहीं हुआ। बीच-बीच में प्रति प्रश्न भी पूछता गया और गुरू के द्वारा प्रश्न-प्रतिप्रश्न पूछने की प्रेरणा भी मिलती रही। श्रीकृष्ण तो अर्जुन को प्रश्न करने के लिए प्रेरित करते रहे-

'तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'

ज्ञान के रहस्य को उद्घाटित करने के लिए शिष्य को विनम्रता पूर्वक गुरू से प्रश्न-प्रतिप्रश्न करते रहना चाहिए। श्रीकृष्ण ने गीता के ज्ञान को रहस्य कहा है। प्रश्न होता है कि इस ज्ञान में रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि कृष्ण के उपदेश में तीन बातें कहीं गयी- प्रथम कर्म करते हुए बन्धन को प्राप्त करना, द्वितीय कर्म त्याग करना और तृतीय महत्त्वपूर्ण

बात यह है कि कर्म करते हुए भी बन्धन को प्राप्त न करना अर्थात् निष्काम कर्म करना। रहस्य यही है कि कर्म भी करो और बन्धन मुक्त बनो।

ज्ञानयज्ञ की श्रेष्ठता

गीता में अनेक प्रकार के यज्ञों का उल्लेख करते हुए ज्ञान यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अन्य यज्ञों में द्रव्य अर्थात् अर्थ की अपेक्षा रहती है। प्रायः यज्ञों में दक्षिणा दिया जाता है, गरीबों को दान दिया जाता है और अपनी प्रिय वस्तु दान में दी जाती है। कठोपनिषद में ऐसे ही गाय दान का उल्लेख है। गायों में कुछ गायें बन्ध्या तथा दूध न देने वाली थी जिसका प्रतिकार नाचिकेता ने किया था।[2] अन्य यज्ञों में गरीबों एवं असहायों को धन दिया जाता है किन्तु ज्ञान यज्ञ में किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं होती है तथा द्रव्य विहीन ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। कहा गया है-

"श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।"[3]

अर्थात् हे परन्तप अर्जुन! द्रव्य द्वारा किये जाने वाले यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। सारे कर्म पूर्ण रूप से ज्ञान में समाहित हो जाते हैं।

इस प्रकार के ज्ञान का परिणाम है मोह की निवृत्ति। अर्जुन को भी ऐसे ही ज्ञान की अपेक्षा थी। परिजनों के मोह में जकड़े अर्जुन को ज्ञान के द्वारा मोह से मुक्ति दिलाना था। इसलिए कृष्ण कहते हैं-

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।।[4]

अर्जुन! तुम उस ज्ञान को प्राप्त करके फिर कभी भी मोह में नहीं फँसोगे। उस ज्ञान के द्वारा तुम पूर्ण रूप से सभी प्राणियों को अपने में और मुझ में देख सकोगे। इशोपनिषद में भी स्पष्ट कहा गया है कि जिस साधक के लिए समस्त विश्व आत्मस्वरूप हो जाता है, कोई अपना पराया नहीं रहता है तथा उसके लिए न कोई मोह रह जाता है और न हीं कोई शोक। वह सर्वदा एकरूप, एकरस, एक बोध वाला हो जाता है। उसकी भेददृष्टि समाहित हो जाती है-

"यस्य सर्वाणि भूतान्यात्मेवाभूद विजानतः।
तत्र को मोहः क शोक : एकत्वमनुपश्यतः।।"[5]

ज्ञान का वैशिष्ट्य इस रूप में भी है कि इसके प्राप्त होने से समस्त कर्ममल नष्ट हो जाते हैं। यह ज्ञान उसी तरह से सारे कर्मों को नष्ट कर देता है जिस प्रकार आग सभी प्रकार के ईन्धन को समाप्त कर देता हैं-

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरूते तथा।।[6]

अर्थात् ज्ञान से सभी कर्म समाप्त हो जाते हैं। भारतीय चिन्तन परम्परा में प्रायः तीन प्रकार के कर्म माने गये हैं - प्रारब्ध कर्म, संचित कर्म, संचीयमान कर्म। प्रारब्ध कर्म वह कर्म है जिसके परिणाम मिलने शुरू हो गये। इस कर्म को अवरूद्ध नहीं किया जा सकता। संचित कर्म वे कर्म है जिनका संचय हो चुका है किन्तु परिणाम मिलना शेष है और संचीयमान कर्म वे कर्म है जिनका वर्तमान में संचय किया जा रहा है। ये तीनों प्रकार के कर्म अज्ञान जनित है। अज्ञानता से तात्पर्य कर्तृत्व के अभिमान की अज्ञानता। मैं कर्म करता हूँ - यह अज्ञानता है जबकि कर्म वस्तुतः प्रकृति में हो रहे हैं। इस प्रकार के ज्ञान से कर्तृत्व भाव का बन्धन नहीं होता और सब कुछ करते हुए भी समस्त कर्मों एवं विपाकों से वह मुक्त रहता है। अतः अज्ञानता की निवृत्ति आवश्यक है क्योंकि अज्ञानी, श्रद्धारहित और संशययुक्त व्यक्ति नष्ट हो जाता है। संशय युक्त व्यक्ति के लिए न यह लोक, न परलोक तथा न कोई सुख मिलता है। गीता कहती है-

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।[7]

'ज्ञान सच्छिन्न संशयम्' अर्थात् ज्ञान से ही समस्त प्रकार के संशय नष्ट होते हैं।

ज्ञान इसलिए भी श्रेष्ठ है कि सभी प्रकार की इन्द्रियों को वश में रखने वाला श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। ज्ञान का परिणाम बहुत ही सुखद है। गीता कहती है कि ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् तत्काल ही परमशान्ति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है-

"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतोन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगछति।।"[8]

अतः यह कहना उपयुक्त होगा कि ज्ञान से पवित्र इस संसार में कुछ भी नहीं है और उस ज्ञान को प्राप्त कर लेने के बाद योगसिद्ध व्यक्ति अपने आपको प्राप्त कर लेता है अर्थात् उसे आत्मावबोध हो जाता है फिर उसे कुछ जानने, सुनने, समझने की जरूरत नहीं पड़ती है।

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।"[9]

इस आत्मज्ञान से समस्त प्रकार के अज्ञान नष्ट हो जाते हैं ओर यह ज्ञान सूर्य के समान परमात्मा को प्रकाशित करता है-

"ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम।।[10]

ज्ञान और समदर्शिता

ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति समदर्शी होता है। वह भेदभाव से ऊपर उठ जाता है। अद्वैत दृष्टि का विकास होने से उसे यत्र-तत्र-सर्वत्र परमात्मा ही दृष्टि गोचर होता है। गीता कहती है कि विद्या और विनय अर्थात् चारित्र से सम्पन्न ब्रह्म ही, गाय हो, हाथी हो, कुत्ता या चाण्डाल ही क्यों न हो, ऐसे ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी को सर्वत्र बह्म हीं दिखाई देता है। इसलिए उसकी दृष्टि में कहीं भी भेदभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह सर्वत्र समदर्शी होता है-

"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।[11]

विवेकी मनुष्य भोगों में नहीं रहता। जिसका आत्मज्ञान प्रबल होता है उसे किसी प्रकार के भोग (इहलोक एवं परलोक) आकृष्ट नहीं कर पाते। ऐसे ज्ञानी व्यक्ति अनुकूलता एवं प्रतिकूलता से ऊपर उठ जाते हैं। अनुकूल स्थिति उन्हें आनन्दित नहीं करती और न ही प्रतिकूल स्थिति में वे उद्विग्न होते हैं। ऐसा ज्ञानी समदर्शी ही नहीं समभावी भी होता है। कैसी भी स्थिति हो वह विचलित नहीं होता। हर स्थिति में सम रहने का वह अभ्यासी हो जाता है-

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरवुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितिः।।[12]

द्वैत जब छूटता है तो अहं, त्वं का भेद भी नहीं रह जाता है। इस स्थिति में न पाप रहता है और न पुण्य ही। सारे कल्मष क्षीण हो जाते हैं। उस स्थिति में शरीर, मन और बुद्धि स्वतः संयमित हो जाते हैं और परम सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। इसी स्थिति में पहुँचा व्यक्ति ऋषि कहलाता है। उसका अहम मिट गया, यही निर्वाण है और वह ब्रह्म को प्राप्त हो गया, यही ब्रह्म निर्वाण है-

"लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।"[13]

अस्तु यह समभाव, समदर्शिता आत्मज्ञान से ही संभव है।

ज्ञानी के गुण

गीता के तेरहवें अध्याय में ज्ञानी के गुणों का वर्णन किया गया है। ज्ञानी निरभिमानी, निरंहकारी, विरक्त और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में सम रहने वाला है। ज्ञानी का प्रथम गुण निरभिमानिता है। ज्ञानी के लिए सबकी आत्मा समान है तो कौन किस पर अभिमान करेगा। अभिमान तो प्रायः उच्च का निम्न लोगों के प्रति होता है। किन्तु जब सबकी आत्मा समान है, एक जैसी है तो अभिमान के लिए कोई अवकाश नहीं है। निरभिमानी में दम्भ के अभाव के साथ अहिंसा, क्षमा, आर्जव, शुद्धि, स्थिरता तथा आत्मसंयम का स्वतः विकास होता है-

"अमानित्व मदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्माविनिग्रहः।।[14]

ज्ञानी कभी हिंसक नहीं हो सकता क्योंकि वह जानता है जो कि आत्मा मेरे में है वहीं दूसरों में है। यदि वह दूसरों का घात करेगा तो यह अपना ही घात होगा, दूसरों को कष्ट देगा तो यह अपने पर ही होगा, वह दूसरों पर गुस्सा करेगा तो वह अपने ऊपर ही होगा, वह दूसरों के प्रति कुटिलता करेगा तो वह अपने ऊपर ही होगा। अतः ज्ञानी अद्वैत का पोषक होता है। यही कारण है कि वह क्षमावान होता है। वह सरल होता है। उसका जीवन खुली किताब होता है। कहीं से भी कोई पन्ने पलटे जा सकते हैं। उसके जीवन में कहीं कोई दुराव या छुपाव नहीं होता है। वह आचार्य अर्थात् गुरू की उपासना करता है। ज्ञानी के लिए गुरू सर्वोपरि है। 'गुरु बिन ज्ञान कहाँ' को वह चरितार्थ करता है। वह इसलिए भी निरभिमानी है कि वह गुरू को सर्वोपरि समझता है। कोई अंहकारी अपने से श्रेष्ठ किसी दूसरे को नहीं समझ सकता। चूंकि ज्ञानी गुरू को महत्त्व देता है। अतः वह निरहकारी भी है। ज्ञान की आराधना में कभी-कभी निराशा भी मिलती है। अतः गुरु भक्त को इस निराशा से बाहर निकलने में कोई समस्या नहीं आती है। ज्ञानी में शुद्धि का गुण है। ज्ञानी अपने व्यवहार में शुद्धि या पवित्रता रखता है अर्थात् कोई भी अनुचित साधन नहीं अपनाता तथा कभी भी उसके आचरण एवं व्यवहार से किसी को कोई कष्ट नहीं होता। वह विषम से विषम परिस्थिति में अडिग एवं अविचल रहता है। परिस्थितियाँ कैसी भी हो ज्ञानी के व्यक्तित्व को डिगा नहीं सकती। वह अनासक्त भाव से सम-विषम परिस्थितियों का मुकाबला करता है। कभी परिस्थितियों को अपने व्यक्तित्व पर प्रभावी नहीं होने देता। प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति प्रतिकूल स्थिति में अपने आप को नियंत्रित नहीं कर पाता और उसका गुस्सा दूसरों पर फूट पड़ता है जिसके कारण उसे नुकसान उठाना पड़ता है किन्तु ज्ञानी धीर, गम्भीर होकर अपने आप पर नियन्त्रण रखता है। वह आत्म संयमी है। ज्ञानी इन्द्रियों के विषयों में संयम रखता है। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि में दुःख के दोष का ज्ञान करता है। पुत्र, स्त्री, गृह आदि में अनासक्ति रखता है। इष्ट और अनिष्ट में चित्त को सम रखता है। उसकी भक्ति अनन्य होती है। वह एकान्तप्रिय होता है। भीड़भाड़ में उसकी कोई रूचि नहीं होती है। भीड़ में हम अपने को भुला सकते हैं किन्तु ज्ञान तो निरन्तर आत्मस्मृति की अपेक्षा रखता है। सत्य की यात्रा तो अकेले ही करनी पड़ती हैं। वस्तुतः परमार्थतः हम अकेले ही हैं। भीड़ तो व्यवहार से जुड़ी हुई है। ज्ञान का सम्बन्ध परमार्थ से है। ज्ञानी परमार्थी होता है-

"मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणि।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जन संसदि।।"[15]

अन्त में गीता इन सारे गुणों को ज्ञान ही कह देती है। ज्ञान से ये गुण उत्पन्न होते हैं। अतः कारण से कार्य का उपचार करके गुणों को ज्ञान ही कह दिया गया है। यही दृष्टि गीता को व्यावहारिक बना देती है। चाहे भक्ति हो, चाहे ज्ञान, आचरण का महत्व सर्वत्र है। गीता में ज्ञान की कसौटी आचरण है। यदि ज्ञान सच्चा है तो यह नहीं हो सकता कि वह व्यक्ति के आचरण में न उतरे।[16]

ज्ञान का चरम लक्ष्य

ज्ञान का लक्ष्य अमृततत्त्व की प्राप्ति है। उपनिषदों में उल्लेख है कि मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि क्या वह धन के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति कर लेगी? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि धन के द्वारा किसी अमृतत्व की प्राप्ति नहीं होती। अमृतत्व की प्राप्ति के लिए ज्ञान आवश्यक है। गीता के अनुसार -

"ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तान्नासदुच्यते।।"[17]

इसलिए श्रीकृष्ण ने ज्ञान का परम लक्ष्य अमृतत्व को माना है। ज्ञान से तात्पर्य ब्रह्मज्ञान से है। शंकराचार्य ने ब्रह्म को एकमात्र परमार्थ सत्, अद्वय स्वरूप माना है।[18] ब्रह्म को गीता सत्, असत् से परे मानती है। सामान्यतः हम किसी को सत् या असत् मानते हैं किन्तु ब्रह्म न कभी उत्पन्न होता है और न कभी नष्ट होता है। जब वह सदा से है, सदा रहता है तो उसे सत्, असत् से परे कहना सार्थक है। ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य अमृतत्व इसलिए भी है कि उसके प्राप्त कर लेने के बाद कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं होता है। ब्रह्म को जानने वाला सब कुछ जान लेता है। 'ब्रह्मविद् सर्वं विद्।' जो सब कुछ जान लेता है वह ब्रह्ममय हो जाता है।[19] गीता के अनुसार ज्ञानी जब परमात्मारूप हो जाए तो यही स्थिति उसे अमृतत्व भी प्रदान कर देती है। अतः ज्ञान का सर्वोच्च लक्ष्य अमृतत्व की प्राप्ति है।

ज्ञान के प्रकार

गीता में गुणों के आधार पर तीन प्रकार के ज्ञान का उल्लेख है- सात्विक ज्ञान, राजसिक ज्ञान एवं तामसिक ज्ञान।

सात्विक ज्ञान के संदर्भ में गीता कहती हैं-

"सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।।"[20]

अर्थात् जिस ज्ञान में अलग-अलग प्राणियों में एक अविनाशी भाव को अविभक्त रूप में देखता हैं, उस ज्ञान को सात्विक ज्ञान समझना चाहिए।

राजस ज्ञान वह ज्ञान है जिसके द्वारा व्यक्ति जब प्राणियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नाना भावों को देखता हैं। गीता कहती है-

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।।"[21]

तामसज्ञान वह ज्ञान है जो एक शरीर को ही सब कुछ समझकर उसमें आसक्त रहता है। वह तर्क विरूद्ध, अतात्विक और तुच्छ ज्ञान है। कहा गया है-

"यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्वार्थवदल्पं च तत्तामासमुदाहृतम्।।[22]

संक्षेप में सात्विक, राजसिक एवं तामसिक तीन कर्म हैं। सात्विक कर्म पारमार्थिक ज्ञानपूर्वक होते हैं। राजसिक कर्म लौकिक ज्ञानपूर्वक होते हैं तथा तामस कर्म अज्ञानपूर्वक होते हैं। सात्विक ज्ञान में 'मैं' और 'तू' का भेद नहीं रहता, राजसीज्ञान में 'मैं' और 'तू' दोनो रहते हैं किन्तु तामसी ज्ञान में केवल 'मैं' ही रह जाता है। सात्विक ज्ञान विविधता में एकत्व की अनुभूति है। इस ज्ञान से सम्पन्न साधक किसी कर्म के प्रति आसक्ति नहीं रखता, न किसी कर्म फल की इच्छा रखता है। वह तो निष्काम कर्म करता है। अतः सात्विक ज्ञान सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, पूर्व ज्ञान है, ब्रह्मज्ञान है, परमसत्ता का ज्ञान है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता हैं कि गीता का ज्ञान अनादिकाल से है। इस ज्ञान की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है। यहां ज्ञान के लिए पात्रता का भी निर्धारण है। कुपात्र को ज्ञान नहीं हो सकता। तीन ज्ञान की चर्चा के साथ श्रेष्ठ ज्ञान ब्रह्म ज्ञान को माना गया है। परमसत्ता के ज्ञान के पश्चात् कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। सकामकर्म छूट जाता है, बन्धन तिरोहित हो जाता है और अमृतत्व की प्राप्ति हो जाती है। यही गीता के ज्ञान का रहस्य है।

संदर्भ सूची

1. भगवद् गीता, 4/1
2. कठोपनिषद कथा
3. भगवद्गीता, 4/33
4. वहीं, 4/35
5. ईशोपनिषद, 1/2/13
6. भगवद्गीता, 4/37
7. वहीं, 4/40
8. वहीं, 4/39
9. वहीं, 4/38
10. वहीं, 5/16
11. वहीं, 5/18
12. वहीं, 5/20
13. वहीं, 5/25
14. वहीं, 13/7
15. वहीं, 13/10
16. श्रीमद्भगवद्गीता विपुल भाष्य, दयानन्द भार्गव, पृ. 348
17. भगवद्गीता, 13/12
18. ब्रह्मसूत्र शा.भा., एकमेवपरमार्थसत अद्वयं ब्रह्म
19. ब्रह्मसूत्र शा.भा., 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति
20. भगवद्गीता, 18/20
21. वहीं, 18/21
22. वहीं, 18/22

निदेशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राज.)